thearyasamaj.org

ओ३म्

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु
- हमारे वीर विजयी हों

वर्ष : 29 अंक : 8, 25 सितम्बर, 2014 दयानन्दाब्द 190 सृष्टि संवत् 1,96,08,53,111

आर्य वीर विजय

अमर शहीद पं. लेखराम स्मृति मासिक पत्रिका

सार्वदेशिक आर्यवीर दल हरियाणा ● 10 वर्षीय शुल्क 700 रु. ● वार्षिक शुल्क 70 रु. ● यह अंक 10 रु.

ओ३म्

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु

"आर्यसमाज और बलिदान"

हरियाणा-दिल्ली-पंजाब-उत्तर प्रदेश-उत्तरांचल-राजस्थान-मध्यप्रदेश-गुजरात-महाराष्ट्र-हिमाचल प्रदेश

विज्ञापन की दरें (वार्षिक)

अन्तिम पृष्ठ	7000/-	अन्दर के रंगीन पृष्ठ	4000/-
अन्तिम पृष्ठ रंगीन आधा	4000/-	अन्दर का आधा (सादा)	2500/-
अन्तिम अन्दर का रंगीन	6000/-	एक विज्ञापन पट्टी 250/- प्रति पृष्ठ, प्रति अंक	

ऋग्वेद

|| ओ३म् ||

यजुर्वेद

देव दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज नेहरू ग्राउण्ड फरीदाबाद

के.एल. महता दयानन्द पब्लिक स्कूल्ज़
के.एल. महता दयानंद महिला महाविद्यालय

देव दयानंद के सच्चे शिष्य बन
शिक्षा का अलख जगाया।
पूर्णाहुति में निज-उत्सर्ग कर
सेवा का धर्म निभाया।
ऋषि के सच्चे पथ पर चलकर
'महात्मा' वह कहलाया।।

महात्मा कन्हैयालाल महता

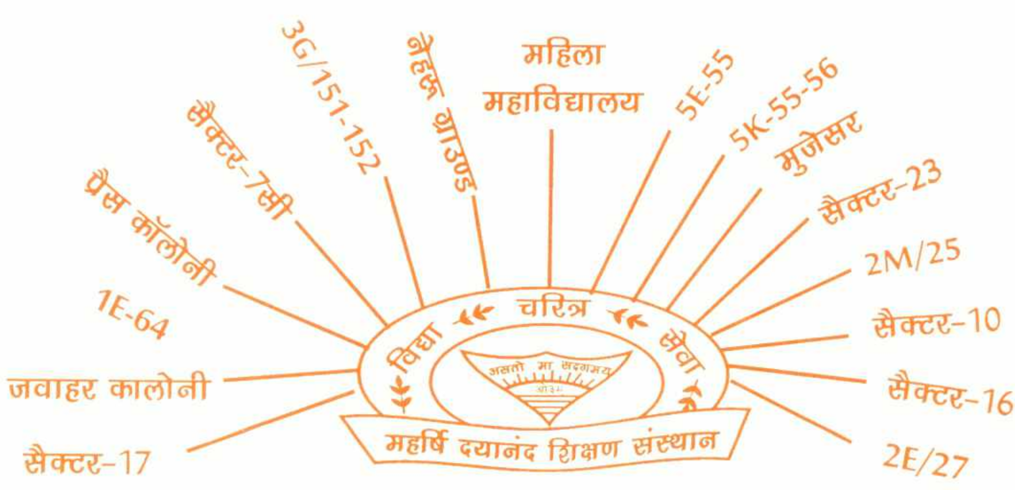

अथर्ववेद

सामवेद

thearyasamaj.org

फूलों का गुलदस्ता

संकलनकर्ता– मनोहर लाल आनन्द, प्रधान सम्पादक

1. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये। (महर्षि दयानन्द)
2. आकाश में स्थित सूर्य और चन्द्रमां भी विपत्ति में पड़ते हैं फिर धरती के कमजोर मनुष्यों की क्या गिनती। (शूद्रक)
3. स्वयं प्रसन्न रहें और आसपास के लोगों तथा परिवार के लोगों को प्रसन्न रखने की बात सोचा करें।
4. विश्व में केवल एक ही मन्दिर है वह है मनुष्य का शरीर। इस स्वरूप से अधिक पवित्र कोई स्थान नहीं। (बावलिस)
5. भगवान पहले आपका सर्वस्व लेंगे, फिर अपना सर्वस्व देंगे।(भक्ति योग)
6. इस पद यात्रा में मुझे अनुभव हुआ कि आत्म-शुद्धि का सरल मार्ग-निःस्वार्थ सेवा ही है। (वेद)
7. सेवा लेना जीवन को बेच देना है और सेवा करना जीवन प्राप्त करना है। जिस प्रकार अन्न को स्वयं खाना उन्न को समाप्त कर देना है और अन्न को बो देना उसमें वृद्धि करना है। (मनुस्मृति)
8. शुद्ध विचारों से भी ईश्वर मिलन के समान सुख मिलता है।(गुरु नानक)
9. ईश्वर का ध्यान करने के लिये सर्व प्रथम मन की पवित्रता आवश्यक है।
10. मेहनत वह चाबी है जो किस्मत का दरवाजा खोल देती है। (चाणक्य)

आर्य वीर विजय

सम्पादक मण्डल

मनोहर लाल आनन्द
प्रधान सम्पादक

सतीश कौशिक
व्यवस्थापक
☎ : 9312083458

उमेद सिंह शर्मा
संचालक
☎ : 9868956786

देश बंधु आर्य
संरक्षक
☎ : 9811140360

डॉ. (श्रीमती) विमल महता
संरक्षिका
☎ : 9350266601

अजीत कुमार आर्य
संरक्षक
☎ : 09794113456

श्री शिव दत्त आर्य
संरक्षक
☎ : 9810638622

संजीव कुमार मंगला
कानूनी परामर्शदाता
☎ : 9812271456

समस्त अवैतनिक

आर्य वीर चिकित्सालय का निर्वाचन

श्री भारत भूषण जी को सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित किया गया और उनको अधिकारी एवं कार्यकारिणी के सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। उनके द्वारा मनोनीत अधिकारी इस प्रकार हैं – 1. उपप्रधान–सोमनाथ आर्य 2. उप-प्रधान – श्री लक्षमण पाहूजा, 3. महामन्त्री – श्री प्रवीन मदान, 4. मन्त्री–श्री नरेन्द्र आर्य, 5. उप-मन्त्री – श्री यशपाल, 6. कोषाध्यक्ष – श्री शिवदत्त आर्य, 7. लेखा निरिक्षक – श्री सत्यप्रकाश वीर। श्री भारत भूषण आर्य जी ने सबका धन्यवाद किया और मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग करने की अपील की।

– सोमनाथ वीर, उप-प्रधान

बैंक सम्बन्धी कार्यवाहियों के लिए जानकारी – (बैंक का नाम – AXIS BANK)

आर्य वीर विजय का बैंक एकाउण्ट नं. 039010100010766

IFSC Code : UTIB0000039

thearyasamaj.org

सम्पादकीय

बलिदान

पिछले अंक में आर्य समाज और बलिदान के सम्बन्ध में कुछ छापा था। इस अंक में भी इसी के बारे में छापा जा रहा है। सच्चे आर्य वीर जैसे जैसे पढ़ेंगे वैसे वैसे महसूस करेंगे कि पहली पीढ़ी के आर्यों के दिलों में ऋषि मिशन के लिये कितनी आग धधकती थी और आज हम कहां खड़े हैं। वह लोग बड़े उत्साह और चाव से गाया करते थे–

आयेंगे खत अरब से जिनमें यह लिखा होगा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।।

उस समय सचमुच हलचल मचा दी थी। जहाँ कहीं भी आर्य समाजी होता था वह कुरीतियों के विरुद्ध उठकर खड़ा हो जाता था और उसके लिये बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने के लिये तैयार हो जाता था। पर आज हमारी क्या दशा है, कवि के शब्दों में –

जमाना बड़े शौक से सुन रहा था,
हम ही सो गये दास्तां कहते कहते।।

आर्य समाज के बहुत से कार्यों को भारतीय संविधान में मान्यता मिल गई है और अब कानून उनका पालन करा रहा है। जैसे हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारे हरिजन भाईयों का उद्धार, पिछड़ी जातियों को अधिकार देना, स्त्री जाति का उत्थान, शिक्षा का प्रचार प्रसार, शराब बन्दी आदि। शुद्धि प्रचार, गो रक्षा आदि विश्व हिन्दु परिषद ने अपना लिया है। वैसे आज देश में जड़ पूजा बढ़ती जा रही है। अवतारवाद खूब पनप रहा है– नये नये भगवान पैदा होते जा रहे हैं और कुछ जेल की हवा भी खा चुके हैं। अब आर्यों को ठण्डे दिल से सोचना चाहिये और इस समय की परिस्थितियों के अनुसार ऋषि मिशन को आगे ले जाने के लिये कटिबद्ध हो जायें तब हम सचमुच जय घोष लगाने के हकदार बन सकेंगे। समस्यायें हमें पुकार रही हैं, हमें चुनौतियों को स्वीकार करना होगा फिर जनता हमारा साथ देने के लिये तत्पर हो जायेगी। जैसे कि पिछले सम्पादकीय में लिखा था कि यह सामग्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा छापी गई पुस्तक "बलिदान जयन्ति स्मृति" ग्रन्थ से ली गई है जो 1961 में छपी थी। अगला अंक भी इसी पुस्तक के ऊपर आधारित होगा।

– सम्पादक

Auth. Distributor
Sleepwell
Sleepwell

परदे ही परदे गददे ही गददे

Singhal Furnishing

J.K. Singhal
S.K. Singhal

(Auth. Sleepwell Gallery)

Deals in : All kinds of S/W Mattress, Cushions, Pillows, Flooring Carpets, Curtains, Sofa's Clothes, Sofa Materials & Blinds.

Near Aggarwal Dharmshala, Nathu Colony, Chawla Colony, Ballabgarh-121004

Ph. : (O) 0129-2244905, J.K. : 9911706903, S.K. 9891305902

thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जीवन और कार्य

स्वामी दयानन्द का जन्म सन् 1823 में सामवेदीय औदीच्य ब्राह्मण परिवार में टंकारा ग्राम, काठियावाड़ में हुआ। दयानन्द कर्षन लाल तिवारी के सबसे बड़े पुत्र थे। उनका नाम मूलशंकर रखा गया था। उन्हें दयाल जी भी कहते थे। कर्षन जी के और भी दो लड़के और दो लड़कियां थीं।

कर्षन जी धनाढ्य जमींदार थे और साहूकारा भी करते थे। वे सरकारी अफसर भी थे। वे शैव थे और मूलशंकर को शिव की पूजा सिखाई गई। मूल शंकर का पालन शुद्ध सनातन तरीके से हुआ। पांच साल की अवस्था में मूलशंकर ने देवनागरी सीख ली थी और कई धार्मिक पुस्तकें कण्ठस्थ कर ली थीं। आठ साल की अवस्था में उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया। उन्हें गायत्री मंत्र और संध्या सिखाई गई। उन्होंने रुद्राध्याय और यजुर्वेद संहिता भी कण्ठस्थ कर ली। जब वे 14 साल के हुए तो उनकी शिक्षा बतौर शैव के पूरी हो चुकी थी।

सन् 1836 में मूलशंकर को शिवरात्रि के दिन उपवास रखने के लिए और शिव मूर्ति के सामने जागने के लिये कहा गया। आधी रात गए उन्होंने एक चूहे को शिव मूर्त्ति पर चढ़ते और खाद्य सामग्री खाते हुये देखा। यह देख उनके मन में शंका पैदा हुई कि क्या यह पत्थर की मूर्ति भगवान हो सकती है। उन्होंने अपने पिता को जगाया और अपनी शंका का समाधान मांगा। जब उन्हें ठीक उत्तर न मिला तो उनकी आस्था मूर्ति पूजा से उठ गई।

इस घटना के पांच साल बाद मूलशंकर की बहिन और चाचा की मृत्यु हो गई। इससे उन्हें बहुत शोक हुआ। उन्होंने सोचना शुरु किया कि शोक-ताप पर विजय कैसे पाई जाए। जीवन के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए उन्होंने दत्तचित होकर संस्कृत साहित्य और व्याकरण पढ़ना शुरु किया। उनके माता-पिता के मन में सन्देह होने लगा कि उनका पुत्र संसार त्यागना चाहता है। इसलिये उन्होंने उनको विवाह बंधन में बांधना चाहा। और विवाह की तारीख पक्की कर दी गई। मूलशंकर ने जब देखा कि उनके विरोध का कोई असर नहीं हो रहा तो वे घर से निकल भागे। यह घटना सन् 1846 की है, तब उनकी अवस्था केवल 21 साल की थी।

स्वामी जी के गृहस्थ-जीवन में तीन घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं-प्रथम शिवरात्री जागरण, द्वितीय बहिन और चाचा की मृत्यु और तृतीय गृह त्याग। मूर्ति पूजा के विरुद्ध उनके मन में इतना विद्रोह था कि उन्होंने मूर्ति पूजा के गढ़ बनारस और हरद्वार में भी इसका पूरे ज़ोर से खंडन किया। एक बार उन्होंने घर छोड़ा तो फिर वापस जाने का नाम नहीं लिया और जीवन भर सम्बन्धियों का मुंह नहीं देखा।

गृहत्याग करने पर उन्हें पता चला कि शैलनिवासी 'लाला भक्त' नामक योगी बहुत पहुँचा हुआ है। मूलशंकर उनके पास योग सीखने गये। यहाँ उन्होंने सन् 1846 में ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश किया और शुद्ध चैतन्य नाम धारण किया। जब शुद्ध चैतन्य की संतुष्टि लाला भक्त से नहीं हुई तो उन्होंने फिर अपना पर्यटन जारी रखा। आगामी 15 साल वे ज्ञान की खोज में घूमते रहे और सारा मध्य और उत्तरी भारत घूम डाला।

इस काल में उन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय ज्ञान का उपार्जन किया। उन्होंने वेद, उपनिषद् और सूत्र पढ़ और पाश्चात्य ज्ञान का भी परिचय प्राप्त किया। उन्होंने कई स्थान देखे। परमानन्द परमहंस के साथ वेदान्त पढ़ा।

जब उन्होंने देखा कि खाना बनाने में बहुत वक्त लगता है और अध्ययन में बाधा होती है तो उन्होंने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया। एक दक्षिणी साधू स्वामी पूर्णानन्द ने उन्हें सन् 1847 में संन्यास धारण कराया और दयानन्द नाम दिया।

स्वामी दयानन्द ने योग ज्वालानन्द पुरी और शिबानन्द गिरि से सीखा। तब स्वामी जी आबू पर्वत गए औरघूमते घामते सन् 1854 में हरद्वार कुम्भ मेले में पहुँचे। इस समय में वे योगाभ्यास करते रहे। उन्होंने ऋषिकेश, टिहरी, गुप्तकाशी केदार, बद्रीनाथ और जोशीमठ का दर्शन किया।

बद्रीनाथ में उन्हें मंदिर के प्रधान पुजारी रावल जी से पता चला कि तब वहाँ कोई सच्चा योगी नहीं था। योगी

thearyasamaj.org

से मिलने की स्वामी जी की इच्छा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने सारे भारत की खोज शुरु की। वे पहाड़ों में घूमें, नदी तलहटियों में भटके और उन्होंने सर्दियों के दिनों बर्फानी नालों को तैर कर पार किया।

पन्द्रह साल के कष्टों और भ्रमण के बाद वे सन् 1860 में मथुरा आए। मथुरा में उन्हें एक स्वामी के दर्शन हुए जो दुबला पतला, जन्मान्ध और अंध विश्वास का कट्टर शत्रु था। उनका नाम स्वामी विरजानन्द था। स्वामी दयानन्द के जीवन पर सब से अधिक स्वामी विरजानन्द का प्रभाव पड़ा। वे आधुनिक संस्कृत साहित्य और व्याकरण के घोर शत्रु थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द को इस शर्त पर दीक्षा देना स्वीकार किया कि दयानन्द आधुनिक संस्कृत साहित्य की सब पुस्तकें फेंक दें।

स्वामी विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द को तीन साल तक शिक्षा दी। शिक्षा समाप्त होने पर जब स्वामी दयानन्द आध सेर लौंग दक्षिणा के रूप में लेकर स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा कि दयानन्द! मैं तुम से कुछ और दक्षिणा चाहता हूँ। तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि जब तक तुम जीवित रहोगे तुम आर्य धर्म का प्रचार करोगे और अनार्ष ग्रंथों का खण्डन करोगे। और इसके लिये तुम्हें अपना जीवन भी देना पड़े तो चूकोगे नहीं। यही मेरी दक्षिणा है। इस प्रकार गुरु के आदेश से स्वामी जी ने वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ किया।

अपने धर्म प्रचार में स्वामी जी ने भागवत, मूर्तिपूजा का खण्डन किया और एकेश्वरवाद का प्रचार किया। स्वामी जी ने गोरक्षा के लिए भी महान् प्रचार कार्य किया।

स्वामी जी ग्वालियर, जयपुर, अजमेर आदि स्थानों पर घूमते-घूमते मार्च 1867 में हरद्वार पहुँचे। हरिद्वार पहुँच कर स्वामी जी सप्त सरोवर पर ठहरे जो ऋषिकेश और हरिद्वार के बीच में हरिद्वार से तीन कोस पर है। वहाँ बाड़ा बांधकर और आठ, दस छप्पर डाल कर उन्होंने डेरा डाला और एक पताका गाड़ दी। जिस पर 'पाखण्ड खण्डन' शब्द लिखे हुए थे। उस समय पन्द्रह, सोलह संन्यासी और ब्राह्मण उनके साथ थे, उनके वस्त्र गेरूआ थे, गले में रुद्राक्ष माला थी। स्वामी जी ने प्रतिदिन उपदेश देना प्रारम्भ किया जिस में उन्होंने मूर्ति पूजा, अवतारवाद, भागवत, तीर्थ, तिलक, छाप कठा और चक्रांग आदि का प्रबल खण्डन किया।

महाराज ने कुम्भ पर देखा कि जनता अंधकार में फंसी है। संस्कृत के विद्वान स्वार्थान्ध होकर धर्म के नाम पर लोगों को लूट रहे हैं। जिन लोगों का कार्य गृहस्थी को धर्मोपदेश करना था वह स्वयं ही उन्हें असत्य सिद्धांतों की कीचड़ में फंसा कर धर्म विमुख बना रहे हैं। साधु समाज की भी वैसी ही हीन दशा है। वह अनेक शाखाओं प्रशाखाओं में विभक्त हैं। नाम के साधु हैं परन्तु गृहस्थों से गए बीते हैं। कौन सा दुर्व्यसन है जो गृहस्थों में है और उन में नहीं है। अन्यों में शांति स्थापन तो दूर रहा, साधू संन्यासी आपस में अनेक प्रकार के कलह विवाद उठा कर अशांत हो रहे हैं। धर्म केवल आडंबर का नाम रह गया है। ऐसी दशा में स्वामी जी के मन में देश हित और समाज कल्याण की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार अन्य साधु संन्यासियों की भांति रहने सहने से कार्य नहीं चलेगा। उन्हें संसार की मोह वासना से सर्वथा ऊँचा उठना चाहिये। जो सामग्री वस्त्र, पुस्तक, धन आदि उनके पास थी वह भी उन्हें मार्ग में बाधा प्रतीत होने लगी। इन विचारों का उनके मन में स्फुरण होने लगा और एक दिन व्याख्यान देते-देते वह एक बार ही गद्‌गद् हो गए और 'सर्व वै पूर्णस्वाहाः' कह कर उठ खड़े हुए और जो कुछ उनके पास था उसे लोगों को बांटने लगे। केवल एकलंगोट रख कर शेष सामग्री योग्य पात्रों को दे दी और यह प्रण किया कि जब तक हमारी इष्ट सिद्धि न होगी गंगा तट पर विचरण करेंगे और मौनव्रत धारण करेंगे। परन्तु उनका मौनव्रत चला नहीं क्योंकि एक दिन एक मनुष्य उनकी कुटी के द्वार पर भागवत की स्तुति करने लगा-'भागवतं निगम तरोगलितं फलम्।' स्वामी जी उसे सहन न कर सके और तुरंत ही उसका खण्डन करने लगे। इस प्रकार उनका ढाई महीने का मौनव्रत समाप्त हुआ।

स्वामी जी के बहुत शास्त्रार्थ हुए जिन में बनारस, बरेली, बम्बई, हुगली, कलकत्ता, पटना, डुमराव, राजकोट, सूरत, मुरादाबाद, जालंधर, अजमेर और उदयपुर के शास्त्रार्थ प्रसिद्ध हैं। इन शास्त्रार्थों में उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए एकेश्वरवाद का प्रचार किया। स्वामी जी ने कई सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अंध विश्वासों का विरोध किया जो हिन्दू धर्म में आ गए थे।

स्वामी जी ने केवल खण्डन ही नहीं किया उन्होंने हिंदू समाज़ को वैदिक आदर्शों पर स्थापित करने के लिये

thearyasamaj.org

अपने विचार भी प्रस्तुत किये। समाज निर्माण के लिये शिक्षा सब से अधिक आवश्यक है इस लिये उन्होंने छलेसर, कासगंज, मिर्जापुर और काशी में संस्कृत पाठशालाएं स्थापित की। इन पाठशालाओं का उद्देश्य था वेद उपनिषद् दर्शन आदि आर्ष ग्रंथों का शिक्षण व आर्ष ज्ञान का प्रचार।

स्वामी दयानंद ने कई रजवाड़ों का भ्रमण किया ताकि वे राजाओं को राजधर्म सिखा सकें। स्वामी जी ने अजमेर, जोधपुर और शाहपुर के राजाओं को शासन किस तरह करना चाहिए इसकी शिक्षा दी। स्वामी जी का विश्वास था कि अगर राजा सदाचारी होगा तो प्रजा भी सदाचारी होगी। स्वामी जी राजा द्वारा नैतिकता के पालन को अत्यावश्यक समझते थे। स्वामी जी का यह विचारयूरोपियन फिलास्फर मैकेवली के विचार से विपरीत है। मैकेवली का कहना था कि राजा को राज्य व अपने उत्कर्ष के लिये अनैतिक व्यवहार की भी छूट है। स्वामी जी का सिद्धांत था 'यथा राजा तथा प्रजा' इसीलिये उन्होंने जोधपुर के महाराजा की, उनके अनैतिक व्यवहार के लिये इन शब्दों में भर्त्सना की– "सौभाग्य की बात है कि आप में अनेक प्रशंसनीय शुभ गुण, आरोग्य और राजैश्वर्यसम्पन्नता वर्तमान है। परन्तु शोक की बात है कि ऐसे आप बुद्धिमान होके नीचे लिखी थोड़ी सी बातों में न जाने क्योंकर प्रवर्त्तमान रहते हैं। वे ये हैं –

यदि आप वेश्यासंग, पतंग उड़ाना, घुड़दौड़ आदि द्यूत नहीं छोड़ते और राज्यापालन कर्म में कम से कम छः घण्टे परिश्रम और महालक्ष्मीरूप राजकन्या स्वपत्नियों से अधिक प्रेम नहीं करते हैं इत्यादि शोचनीय बातें आप में हैं। आप निश्चय समझिए कि जितने आप के आधीन पुरुष कीर्ति व निन्दा के कार्य करेंगे वह सब आप ही पर गिने जायेंगे। यदि स्वयं मद्यपानादि में प्रवृत्त न हों तो क्या कोई भी इनमें आपको प्रवृत्त कर सकता है। जो स्वार्थी खुशामदी हैं वे तो सदा यही चाहते हैं कि राजा प्रमाद में लगे तो हमारे सब प्रयोजन सिद्ध हो जाएं। परन्तु संसार में इन का नाम कोई भी न लेगा।"

महाराजा को पहले कभी ऐसी भर्त्सना नहीं मिली थी। परन्तु महाराजा ने बुरा नहीं माना और इसे इसी भावना में लिया जिस भावना में स्वामी जी ने भर्त्सना की थी। लेकिन जो व्यक्ति राजा के अनैतिक जीवन का फायदा उठाते थे वे घबरा गये। उन्होंने स्वामी जी की हत्या करने का षडयंत्र किया। उन्होंने धोखे से स्वामी जी को ज़हर दे दिया। जब स्वामी जी को पता चला तो देर हो गई थी। उन्होंने वमन द्वारा ज़हर निकालना चाहा जैसे उन्होंने पहले तीन चार बार किया था परन्तु कोई लाभ न हुआ। उन्हें आबू-पर्वत ले जाया गया और वहाँ से अजमेर। एक महीने तक स्वामी जी बीमार रहे। पीड़ाओं की यंत्रणा सहते रहे पर मुँह से आह तक नहीं निकली, कोई शिकायत नहीं की। उनका आत्म संयम कमाल का था। तीन अक्तूबर 1883 को दिवाली के दिन 5 और 6 बजे के दरम्यान उन्होंने छत की ओर देखा और फिर चारों ओर देखा तथा वेद मंत्रों का उच्चारण किया। तब उपासना में बैठ गए। कुछ देर समाधि में रहे, तब आंखखोली और कहा – "कृपालु भगवान, आप की इच्छा पूर्ण हो। तुम्हारी कैसी लीला है।" उसके बाद वे एक करवट पर लेट गये और अपना श्वास रोक कर, श्वास बाहर फेंका और 6 बजे के करीब शाम को प्राण त्याग दिये।

यह सारा समय पण्डित गुरुदत्त जी स्वामी जी को देख रहे थे। उन्होंने देखा कि किस प्रकार योगी और ईश्वर में आस्था रखने वाला मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता हैं। तब तक पण्डित गुरुदत्त नास्तिक थे, इस दृश्य के बाद वे आस्तिक बन गये। वे स्वामी जी के भक्त हो गए।

स्वामी दयानन्द के जीवन की यह झांकी हमें उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की महानता का परिचय नहीं दे पाती। वास्तव में स्वामी दयानन्द उन व्यक्तियों में से थे जिनके व्यक्तित्व का प्रभाव व्यक्तियों व संस्थाओं पर अमिट छाप बन कर रह जाता है। स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में जो भी आया वही प्रभावित हुआ। हमारे समक्ष श्याम जी कृष्ण वर्मा, गोविन्द महादेव रानाडे तथा शाहपुराधीश आदि के उदाहरण हैं। वास्तव में स्वामी दयानन्द ने भारत की आत्मा को अपनी शक्ति से शक्तिवान बनाया। उन्होंने भाग्यवादी हिन्दू जाति को भाग्यवादिता की शृंखलाओं से स्वतन्त्र किया और बताया कि आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और हमारे कर्म ही हमारे भाग्य का निर्माण करने वाले होते हैं।

पुरुषों में स्वामी दयानन्द पुरुषोत्तम कहे जा सकते हैं। उनका शारीरिक पौरुष और बौद्धिक तेजस्विता दोनों ही अद्वितीय हैं। उनका सुडौल तथा ब्रह्मचर्य के तेज से

thearyasamaj.org

तेजस्वी शरीर जहां पर हरकुलीस की याद दिलाता वहाँ उनका संस्कृत तथा आर्ष ग्रन्थों का ज्ञान उनमें प्राचीन ऋषि के प्रत्यक्ष दर्शन करवाता था। स्वामी दयानन्द जिस दृढ़ता, उत्साह और अथक परिश्रम से अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति व प्रचार में जीवन भर रत रहे वह भी हमारे लिए अनुकरणीय है।

ऋषि दयानन्द का गौरव यही था कि उन्होंने वैदिक सूर्य के ऊपर छाए बादलों को छिन्न भिन्न कर के पुनः उसके स्वच्छ और जीवनप्रद प्रकाश को प्रसारित किया। उन्होंने बतलाया कि वेद ही सम्पूर्ण ज्ञान के मूल स्रोत हैं। वे अपौरुषेय हैं, उनमें केवल एक अजर, अमर, अविनाशी सर्वव्यापक सर्वशक्मितान निराकार परमेश्वर की उपासना की आज्ञा दी गई है। अग्नि वायु, विष्णु शिव आदि नाम जिनको आधुनिक भाष्यकार देव विशेषों को नाम मानते हैं, वास्तव में ईश्वर के गौण नाम हैं। आधुनिक भाष्यकारों ने देव शब्द से हरेक स्थान में उपास्यदेव ही के अर्थ को ग्रहण किया है और इस कारण वे वेदों में अनेक देवों की उपासना का विधान मानने लगे। ऋषि दयानन्द ने देव शब्द के सच्चे अर्थों को प्रकाशित कर इस भ्रान्ति को दूर किया। उन्होंने बताया कि देव किसी योनिविशेष का नाम नहीं। वह सब पदार्थों के लिए-जड़ व चेतन, सभी के लिए प्रयुक्त हो सकता है यदि उनमें कान्ति आदि गुण पाए जाते हों।

इसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने यह भी बताया कि वैदिक यज्ञ में पशुहिंसा की कहीं आज्ञा नहीं। वेदों में यज्ञ का नाम है 'अध्वर'-अर्थात् हिंसा से रहित। यज्ञ का अभिप्राय यह नहीं कि रुष्ट देव को पुष्ट पशु की बलि देकर सन्तुष्ट किया जाए, किन्तु यज्ञ का अभिप्राय तो यह है कि विद्वान् महात्मा जन एकत्रित होकर वायु जल की शुद्धि और रोग निवारण के लिए अग्निहोत्र करें या फिर आध्यात्मिक विद्या द्वारा मनुष्यों का कल्याण करें।

आधुनिक जातपात के बन्धनों का वेदों में चिह्न भी नहीं। वेदों में मनुष्य जाति को चार वर्णों में विभक्त किया गया है और वर्ण गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल निर्धारित होते हैं न कि जन्म के अनुकूल। उच्च कुल में जन्म लेने से किसी मनुष्य पर श्रेष्ठता की छाप नहीं लग जाती। उच्च वर्ण का मनुष्य नीच कर्म करने से पतित हो जाता है। और नीच वर्ण वाला उत्तम कर्म करने से अपने से उच्च वर्ण का अधिकारी बन सकता है।

जाति की उन्नति के लिए ऋषि दयानन्द ने जहाँ पर वर्ण व्यवस्था का विधान किया है वहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आश्रम धर्म का पालन आवश्यक है ऐसा प्रतिपादित किया। प्रत्येक मनुष्य को जीवन क्षेत्र में उतरने से पहले उसके प्रलोभनों का सामना करने, उसके इन्द्रजाल को तोड़ने, जीवन के दुःखों को सहने के लिए अपने आप को तैयार करना चाहिए। इस तैयारी के लिए पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तक तथा स्त्री के लिए कम से कम 16 वर्ष तक ब्रह्मचारी रह कर शरीर को पुष्अ, मन और इन्द्रियों को वशीभूत करके, विद्या से बुद्धि को परिष्कृत करके स्वयंवर की रीति से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। गृहस्थाश्रम में प्रत्येक को अपने 2 वर्ण के धर्मों का पालन करते हुए उत्तम संतान को उत्पन्न करके पचास वर्ष की आयु में वानप्रस्थी बन कर अपनी विद्या और अनुभव को परिपक्व करना चाहिए और सब प्रकार की एषणाओं को जीत कर प्राणिमात्र का उपकार करने के लिए संन्यासाश्रम ग्रहण करना चाहिए जिसमें गृहस्थों को अपने विद्या पुरुषार्थ और सदाचार से लाभ पहुँचा कर सब ऋणों से उऋण होकर अन्त में मोक्ष का अधिकारी बने।

ऋषि दयानन्द ने जातपात का खंडन तथा वैदिक वर्ण व्यवस्था का प्रचार कर तत्कालीन भारतीय समाज को ब्राह्मणों के अत्याचार से बचाया। तत्कालीन भारत के ब्राह्मणों ने वेदों पर अपना एक मात्र अधिकार जमाया हुआ था। वे स्वयं वैदिक शिक्षा के बहुत जानकार नहीं थे और क्षत्रिय वैश्यों और शूद्रों को वेद विषयक ज्ञान अर्जित करने से रोकते। शूद्रों व स्त्रियों को वैदिक मन्त्रों के सुनने तक से वंचित कर दिया था। स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों के अमृत स्रोत का पान करने की आज्ञा मनुष्यमात्र को दी। यही नहीं वरन् उन्होंने तो वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म घोषित कर दिया। क्योंकि सर्वसाधारण संस्कृत को सुगमता से समझ नहीं सकते इस लिए स्वामी दयानन्द ने सर्वविद्याभंडार वेद का भाषार्थ सरल भाषा में किया। यह ऋषि का सर्व साधारण पर महान अनुग्रह है, कृपा है। हम इसके लिए उनके ऋणी हैं। इस ऋण से उऋण होने के लिए हमें ऋषि के वेदभाष्य के अध्ययन व प्रचार को

thearyasamaj.org

अपना कर्त्तव्य बना लेने का प्रण करना होगा और साथ ही वैदिक आदर्शों को अपने जीवन में उतारना होगा।

वैदिक ज्ञान की दृढ़ चट्टान पर खड़े होकर ऋषि ने अपनी पाखण्ड खंडनी पताका गाड़ी और समाज में फैली कुरीतियों व पाखण्डों पर वज्रघात किया। उन्होंने स्त्रियों को समाज में पुरुषों से ऊँचा नहीं तो उनके बराबर तो अवश्य ही स्थान दिलाया। ऋषि के विचार में वर्णाश्रम व्यवस्था पुरुषों व स्त्रियों दोनों पर बराबर ही लागू होती है। उन्होंने आश्रम धर्म का पालन स्त्री व पुरुष दोनों के लिए ही जरूरी ठहराया। शिक्षा व वैदिक शिक्षा की प्राप्ति स्त्री व पुरुष दोनों के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। स्त्रियाँ भी राज्य कर सकती हैं। युद्ध लड़ सकती हैं व न्यायाधिकारी बन सकती हैं। यह पहली बार इस युग में महर्षि ने ही कहा। वे बालविवाह के घोर विरोधी थे और बालविधवा विवाह के समर्थक। पर्दे की प्रथा का उन्होंने विरोध किया और इस प्रकार स्त्री जाति को घर की चार दिवारी से निकाल खुली व शुद्ध वायु में सांस लेने में समर्थ किया। माता के पद के वास्तविक गौरव का ऋषि ने जाति को दिग्दर्शन कराया। स्त्री जाति-मातृशक्ति, महर्षि के ऋण से उऋण हो सकती है यदि वह प्रण करे कि अपनी सन्तानों को वैदिक आदर्शों का पालन करने वाली बना कर जाति का उद्धार करेगी। वास्तव में जैसा ऋषि ने कहा समाज का भविष्य, समाज की उन्नति व समाज का पतन सब मातृशक्ति पर ही निर्भर है क्योंकि समाज के चरित्र का निर्माण उसी के हाथों होता है।

स्वामी दयानन्द ने मूर्ति पूजा का घोर विरोध किया, मूर्तिपूजा के ऊपर वह प्रहार इतनी योग्यता और इतनी आन्तरिकता के साथ करते थे जैसा कि भारत के किसी आचार्य ने उनसे पहले कभी नहीं किया था। स्वामी दयानन्द का यह दृढ़ विचार था कि हिन्दुओं की अवनति का प्रधान कारण मूर्तिपूजा ही है। जो धर्म पूर्ण भाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था उसे पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया? मूर्तिपूजा ने। कामादि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधनों के बदले तिलक और त्रिपुण्ड किसने धारण कराया? मूर्तिपूजा ने। ईश्वर भक्ति, परोपकार और स्वार्थत्याग के बदले अंग में गोपी चन्दन का लेपन, मुख से गंगो लहरी का उच्चारण, कण्ठ में मालाओं का धारण किसने सिखाया? मूर्तिपूजा ने। संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता के स्थान में केवल दिन विशेष पर खाद्य विशेष न खाना, प्रातः सायं अलग अलग वस्त्रों को पहनना और तिथि विशेष पर मनुष्य विशेष का मुख देखना तो दूर उनकी छाया तक का स्पर्श न करना, सब किसने सिखाया-मूर्तिपूजा ने। आर्य जाति को सैंकड़ों सम्प्रदायों में किसने बांटा-मूर्तिपूजा ने। मूर्तिपूजा के परिणाम स्वरूप ही जिस परमात्मा का वेदादि शास्त्रों में अकाय अव्रण अस्पर्श आदि शब्दों से कीर्तन किया गया है उस परमात्मा में हिन्दू काम, क्रोध, भय क्षुधा, तृष्णा, व्याधि आलस्य, निद्रा, पुत्रोत्पादन, विद्वेष, हिंसा, परस्त्री गमन आदि का आरोप करने में भी संकोच अथवा पाप का अनुभव नहीं करते। हिन्दुओं ने इन स्वकल्पित और नव निर्मित ईश्वरों में से हरेक की नाना उपकरणों से पूजा करने और इस पूजा प्रणाली को चिरस्थायी बनाने के लिए एक-एक पुराण व उपपुराण की रचना भी कर डाली। दयानन्द ने सत्य ही इस बात को समझा कि नित्य नूतन ईश्वरों की सृष्टि करने की प्रवृत्ति में ही हिन्दुओं ने अपनी अवनति का बीज बोया है। काशी शास्त्रार्थ में उनका प्रधान पक्ष यही था-पाषाणादि मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है। पूजा के शास्त्रियों के साथ भी उनका प्रधान विचारणीय विषय था कि मूर्तिपूजा मिथ्या है। जैसे मूर्तिपूजा आर्य संस्कृति की प्रधानतम वैरिणीहै वैसे ही दयानन्द मूर्तिपूजा के प्रधानतम वैरी थे। उन्होंने मूर्तिपूजा का विरोध कर देश व जाति का विशेष उपकार किया। सत्य ही दयानन्द ने मृतक श्राद्ध, कच्ची पक्की सखरी निखरी रोटी, समुद्र पार न करने के ढकोंसलों को निरर्थक सिद्ध कर भारतीय समाज को पोपों के चंगुल से छुड़ाने का भारी कार्य किया।

वस्तुतः आज का शक्तिसम्पन्न और परिष्कृत हिन्दु धर्म स्वामी दयानन्द ही की देन है। स्वामी जी में महात्मा बुद्ध की मानवता तथा शंकर की बौद्धिकता व वेदज्ञान को महत्ता देने की दृढ़ता दोनों ही एकत्र ग्रथित हो गई। बुद्ध ने जाति पाति की असमानता पर आधारित भारतीय सामाजिक ढांचे का खण्डन किया और परिणामतः एक क्रान्ति ला दी। पर साथ ही में बुद्ध ने वेदों व यज्ञों की मान्यता को समाप्त कर दिया। दूसरी तरफ दयानन्द शंकर के समान् भारतीय संस्कृति का आधार वेदों को मानते हुए भी शंकर के जन्मगत तथा जातिगत रूढ़ियों में विश्‍वास का खण्डन करते हैं और इस प्रकार वैदिक आदर्श के

thearyasamaj.org

आधार पर एक जातिगत भेद रहित आदर्श समाज की कल्पना व रूप-रेखा चित्रित करते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने इस आदर्श समाज में व्यक्ति को उसकी उचित स्थिति का भान कराने के लिए शिक्षा को बहुत महत्व दिया। साथ ही दयानन्द ने पैगम्बर मुहम्मद की भांति एकेश्वर की आराधना को स्थापित कर समाज में समानता तथा एकता को लाने का प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द ने उस एकेश्वर की आराधना का स्थापन किया जिस की उपासना व्यक्ति असहाय की तरह नहीं करता था अपितु जिसके प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण पूर्णतया बौद्धिक रहता है।

इस प्रकार स्वामी दयानन्दने भारतीय समाज को न केवल आन्तरिक कुरीतियों से ही मुक्त किया, वरन् विदेशी सभ्यता व धर्म के आक्रमण से भी बचाया। दयानन्द इस्लाम और ईसाई मत के घोर विरोधी थे। दयानन्द के समय में ये दोनों धर्म हिन्दु धर्म को समाप्त करने में संलग्न थे। हिन्दु जाति का एक बड़ा हिस्सा (पिछड़ी जातियों के लोग) धड़ाधड़ मुसलमान और ईसाई बनते चले जा रहे थे। महर्षि यह जानते थे कि इस्लाम और ईसाईमत जैसे विदेशी मतों के अपनाने से देशवासियों में राष्ट्रीय भावनाओं को, जिनको वह जागृत करना चाहते थे, ठेस पहुँचेगी। वास्तव में महर्षि के समय में नवशिक्षा प्राप्त भारतवासी नवयुवक ईसाई मत की ओर झुकते चले जा रहे थे। ये नवयुवक भारतीय संस्कृति, सभ्यता व धर्म के असली रूप से अनभिज्ञ, हिन्दु धर्म के बिगड़े रूप पर किए गए आक्षेपों का उत्तर देने में असमर्थ ईसाई बनना स्वीकार कर रहे थे। ऐसे समय में ऋषि दयानन्द ने ईसाईयों द्वारा किए हुए आक्षेपों का न केवल उत्तर ही दिया वरन् साथ ही में ईसाई धर्म का खण्डन कर उसके खोखले पन को दिखा हज़ारों भारतीयों को ईसाई बनने से बचाया। भारतवर्ष में ईसाईयत का बोल बाला इसलिए था कि सरकार इस धर्म की पोषक थी। जिस युग में भारतवासी विदेशी वेषभूषा और चाल ढाल पर मोहित होकर नकली अंग्रेज बनने में अपना अहोभाग्य समझते थे, उसी युग में

Arya Public School

Near 100 Ft. Road, Sec.-55, Jeevan Nagar, Faridabad

The School : Neat & Clean Campus, Educated and dedicated Promotors, Transport Facility from nearby areas, Permanently recognised and affliated to Haryana Board, Special emphasis on Spoken English, Ultra modern teaching aids, including projectors, Library with all relevant material.

Director
Sanjay Arya
9212307856

Principal
Rajni Arya
9212307852

thearyasamaj.org

महर्षि ने लिखा "देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आए योरोपियनों को हुए और आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहनते हैं जैसा कि स्वदेश में पहनते थे, परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत लोगों ने उनकी नकल कर ली। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं।" (सत्यार्थ प्रकाश ।। वां समुलास)। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज का इतना अधिक खण्डन ऋषि ने केवल उनके विदेशीपन के कारण ही किया। वह लिखते हैं "इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उनके स्थान पर भरपेट निन्दा करते हैं। ब्रह्मादि ऋषियों का नाम भी नहीं लेते प्रयुत्त ऐसा कहते कि बिना अंग्रेज़ों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई विद्वान ही नहीं हुआ। आर्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आए हैं उनकी उन्नति कभी नहीं हुई।" उनकी भर्त्सना करते हुए वह लिखते हैं– "भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं तब अपने पिता पितामह आदि के मार्ग को छोड़ कर दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना ब्रह्म समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देश्य संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और बुद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता है?" कितने स्वदेशाभिमानी थे ऋषि दयानन्द और कितना गर्व और मान था इन्हें अपने देश पर यह उनके इन शब्दों से स्पष्ट है– "आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई नहीं है.... जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसकी प्रशंसा करते हैं। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाडय हो जाते हैं" (सत्यार्थ प्रकाश ।।वां समुल्लास)। इस महान् देश को दासता की जंजीरों में जकड़ा देख ऋषि का हृदय विदीर्ण हो उठता उन्हें देश की दुर्दशा का महान दुःख था। उन्होंने लिखा है–"आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना भी करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वापरि उत्तम होता है अथवा मत मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" (स.प्र. 8वां समुल्लास)।

इससे स्पष्ट शब्दों में पूर्ण स्वराज्य का समर्थन नहीं किया जा सकता। स्वामी दयानन्द ने उन कमजोरियों का दिग्दर्शन भी देश वासियों को कराया जिनसे लाभ उठा कर विदेशी राज्य अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने में समर्थ होता है। ऋषि लिखते हैं– "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट मतभेद आदि हैं.... जब भाई–भाई आपस में लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।" इन्हीं कमजोरियों को दूर करना ऋषि के खण्डनात्मक कार्य का ध्येय था।

ऋषि देशी रियासतों के राजाओं के नैतिक पतन और रियासतों की दुर्दशा से अत्यन्त दुःखी थे। वे प्रायः कहा करते थे कि "हिन्दु राजाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय है वे कभी के नष्ट हो गए होते, परन्तु जितने या जो कुछ बचे हुए हैं वे उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म से बचे हुए हैं। जोधपुर नरेश को उनके नैतिक पतन पर फटकारते हुए उन्होंने जो शब्द कहे वे सभी जानते हैं कि ऋषि की मृत्यु का कारण बने।

यद्यपि रियासतों पर ब्रिटिश सरकार का अंकुश था फिर भी वे कुछ अंशों में स्वतन्त्र ही थीं। इसीलिए ऋषि ने विचार किया था कि पहले रियासतों में सुधार करना चाहिए। उदयपुर में रहते हुए श्री मोहन लाल विष्णुलाल पण्ड्या से स्वामी जी ने एक बार कहा था –"मैं चाहता हूँ कि देश के राजे महाराजे अपने शासन में सुधार और संशोधन करें, फिर भारत में आप सुधार हो जाएगा। रियासतों के सुधार में भारत का सुधार निर्भर है ऐसा सोच कर ऋषि ने अपना मुख्य कार्य क्षेत्र राजस्थान को चुना। राजस्थान के केन्द्र अजमेर को उन्होंने अपना केन्द्र बनाया।

इस प्रकार 1857 की असफल क्रान्ति के पश्चात् जब भारत पर अंग्रेजों की सत्ता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और पढ़े लिखे उन्नतिशील भारतवासी अपनी महत्वाकांक्षा के विमानों पर बैठ कर औपनिवेशिक स्वराज्य, सरकारी नौकरी और हाईकोर्ट की जजी से

thearyasamaj.org

अधिक ऊँचे नहीं जा सकते थे, जब स्वराज्य का विचार भी किसी के मस्तिष्क में न था तब जिस महापुरुष ने पूर्ण स्वराज्य का स्वप्न देखा था वह महर्षि दयानन्द ही थे। 'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में हों तथा हम पराधीन कभी न रहें' इन शब्दों से पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की थी। महर्षि ने पूर्ण स्वराज्य तथा चक्रवर्ती राज्य के मूल सिद्धान्तों की रूप रेखा सत्यार्थ प्रकाश तथा अपने वेद भाष्य में अंकित की। स्वामी दयानन्द के चक्रवर्ती राज्य की सरकार लोकतांत्रिक होनी है। इस विषय में वह लिखते हैं - एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न होना चाहिए। किन्तु राजा जो सभापति हो, तदाधीन सभा सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजा के आधीन रहे। (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 6)

इस वाक्य का अभिप्राय स्पष्ट है। सभापति ही राजा समझा जाये। राजा सभा का सभापतित्व करता हुआ भी सभा के आधीन रहे और राजा और सभा दोनों अपने को प्रजा के वशवर्ती समझें। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में केवल राजनीति के मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या करके ही संतोष नहीं किया। भारत के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने व्यावहारिक राजनीति का भी विस्तार से प्रतिपादन करके सिद्ध कर दिया कि संस्कृत विद्या में पूरी पूरी राजनीति है। महर्षि ने जो व्यावहारिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं उनके मन से केवल भारत के ही नहीं अन्य देशों के शासकों को भी लाभ पहुँच सकता है।

स्वराज्य की स्थिरता के लिए स्वदेशी, भाषा, आचार व्यवहार और चरित्र के निर्माण पर महर्षि ने बल दिया। और ऋषि के इन विचारों को हम व्यावहारिक गांधीवाद का पूर्वरूप कह सकते हैं।

इस प्रकार संक्षेप से हम कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द भारत की राजनैतिक व सामाजिक क्रान्ति के सर्व प्रथम नेता थे। वे वास्तविक अर्थों में सुधारक थे। वे मनुष्य मात्र में समानता व भ्रातृभाव का प्रचार करते परन्तु यह शिक्षा उन्होंने जे.एस. मिल के विचारों का अध्ययन करके नहीं पाई थी। वे सब मनुष्यों को स्त्री पुरुष, शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सब को विद्योपार्जन करने का परामर्श देते थे पर उन्होंने यह विचार किसी

महर्षि दयानन्द सेवाधाम ट्रस्ट, सैक्टर 7, फरीदाबाद

सर्वे सन्तु निरामयाः

प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र महर्षि दयानन्द सेवा धाम ट्रस्ट (पंजीकृत) आर्य समाज सैक्टर 7ए, फरीदाबाद (हरि.) चिकित्सालय में सभी प्रकार की बीमारियों का इलाज पंच तत्वों (मिट्टी, पानी, धूप, हवा, आकाश) के माध्यम से किया जाता है। किसी प्रकार की दवाई का प्रयोग नहीं किया जाता है।

आर्य समाज की प्रमुख गतिविधियों में से एक प्राकृतिक चिकित्सा लगभग दस वर्षों से निरन्तर ही समाज के लोगों को निरोगी करती चली आ रही है।

महिला तथा पुरुषों के इलाज की अलग-अलग व्यवस्था है। सक्षम तथा कुशल स्टाफ समाज की सेवा में कार्यरत हैं।

निराश न हों तथा जीर्ण रोगों के इलाज के लिए सम्पर्क करें।

नोट : साढे तीन वर्षीय एन.डी.डी.वाई. डिप्लोमा कोर्स के लिए सम्पर्क करें।

- चिकित्सा अधिकारी डा. विजेन्द्र सिंह (सागर जी), दूरभाष : 9210291284

thearyasamaj.org

पाश्चात्य विद्वान के ग्रन्थों से नहीं लिया था। दयानन्द में सब कुछ अपना था। वह पाश्चात्य सभ्यता के ऋणी नहीं थे। सौभाग्यवश दयानन्द अंग्रेज़ी नहीं जानते थे अन्यथा यह कहा जाता कि उन्होंने अपने प्रगतिवादी विचार अंग्रेजी पुस्तकों से प्राप्त किए हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ही दयानन्द ने अपने विचारों का निर्माण किया था। इसलिए दयानन्द विशेष अर्थों में भारतीय थे यद्यपि उनकी शिक्षा वही है जो वेदों की और वेद मनुष्य मात्र के हैं। परन्तु हमारे दृष्टिकोण से वह विशेषतः हमारे हैं और उनके प्रदर्शित पथ पर चलना हमारे लिए हितकारी है। ऐसे महान आत्मा के जीवन का बारम्बार अवलोकन करना चाहिए क्योंकि सत्पुरुषों के सहवास से ही, जो उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके जीवन चरित्र और उनको विचारों के अध्ययन द्वारा मिल सकता है, मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

युग-प्रवर्तक दयानन्द

स्वामी दयानन्द के जीवन काल में भारतीय जनता उनको भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखती रही। उस समय वह यह भी निर्णय नहीं कर सकी थी कि दयानन्द हैं क्या और चाहते क्या हैं? किन्तु आज लगभग पौन शताब्दी के पश्चात् विश्व उनकी वास्तविकता को कुछ 2 समझने लगा है। पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि से स्वामी जी एक नवयुग प्रवर्तक हैं तो भारतीय जनता की दृष्टि से प्रबल एवं उच्च कोटि के धर्म प्रवर्त्तक, धर्मोद्धारक हैं। स्वामी जी ने वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को संसार के समक्ष रखा इसलिए भारतीय जनता ने उन्हें धर्मोद्धारक हैं। स्वामी जी ने वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को संसार के समक्ष रखा इसलिए भारतीय जनता ने उन्हें धर्मोद्धारक समझा। जब स्वामी जी का जन्म हुआ तब भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रवेश होने लगा था, स्वामी जी कार्यक्षेत्र में उतरे तब उस सभ्यता ने अपने पैर अच्छी तरह जमाने प्रारम्भ किए थे। परिणामतः भारतीय सभ्यता के पैर उखड़ने लगे थे। भारतीय सभ्यता के उपासक तो बहुतेरे थे पर उसके सच्चे रक्षक कोई नहीं थे। उस सभ्यता का रक्षक व पोषक साम्राज्य तो नष्ट भ्रष्ट हो ही चुका था। पाश्चात्य सभ्यता की पीठ पर प्रबल साम्राज्य था। पाश्चात्य सभ्यता का पोषक विज्ञान युग था। स्वामी दयानन्द ने पाश्चात्य सभ्यता के आक्रमण से भारतीय संस्कृति की रक्षा की और इस संस्कृति के आधार पर राष्ट्र निर्माण के कार्य का सूत्रपात किया। इसलिए वह भारत के लिए सच्चे अर्थों में नवयुग निर्माता थे। भारतीय राष्ट्र निर्माण भारतीय संस्कृति को छोड़ कर नहीं हो सकता यह अब लोग समझने लगे हैं।

वैदिक धर्म का प्रचार, स्वसंस्कृति की रक्षा और स्वराष्ट्र निर्माण-इन कार्यों को करने के लिए ही स्वामी जी का जन्म हुआ था। वह पहले भारत का भूमण्डल में सांस्कृतिक साम्राज्य देखना चाहते थे और फिर सर्वत्र भूमण्डल में वैदिक धर्म का अधिराज्य। कवीन्द्र रवीन्द्र जिस सांस्कृतिक स्वराज्य का स्वप्न देखते थे, उनसे पचास वर्ष पूर्व स्वामी जी उसी स्वराज्य की आधारशिला रख चुके थे। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रनायकों ने जिन उपायों का प्रयोग किया, दयानन्द उनके विषय में पहले ही लिख गए थे। इस प्रकार दयानन्द भारतीय राष्ट्र निर्माताओं के जनक थे।

इस तथ्य की सत्यता उस समय स्पष्ट हो जाती है जब हम स्वामी दयानन्द की तुलना महामना लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी से करते हैं। यद्यपि देश सेवा में तन मन और धन अर्पण करने वाले महापुरुषों की तुलना समीचीन नहीं फिर भी कुतूहलपूर्ण अवश्य है। वैसे तो तीनों ने ही अपने-अपने समयों में चमत्कारिक कार्य किया है और तीनों ही गुलामी के गहरे नशे में ऊँघते हुए देशवासियों को जगाने वाले हैं, फिर भी तीनों की परिस्थितियाँ इतनी भिन्न थीं कि तीनों के दृष्टिकोण भी भिन्न ही दिखाई देने लगते हैं। कहा जा सकता है महर्षि ने हल आदि चला कर स्वराज्य की भूमि को तैयार किया है, लोकमान्य ने उसमें बीज बिखेरा और महात्मा गांधी ने उसमें फूटते हुए अंकुरों की रक्षा की। भारतीय स्वराज्य व राष्ट्र निर्माण के लिए ये तीनों कार्य ही आवश्यक थे। इसलिए इन तीनों महान आत्माओं की तुलना का अर्थ इनमें में किसी एक को छोटा वा बड़ा ठहराना नहीं है।

समाज सुधार के दृष्टिकोण से महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी एक दूसरे के बहुत समीप हैं। समाज सुधारों के क्षेत्र में दोनों का प्रायः एक मत है, यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से मतभेद भी है। सम्पूर्ण आयु या उसके प्रथम भाग

thearyasamaj.org

को ब्रह्मचर्य आश्रम के रूप में व्यतीत करने की आवश्यकता दोनों समान रूप में अनुभव करते हैं। अछूतोद्धार के विषय में दोनों का एक सा मत है। परन्तु इन्हीं विषयों पर दोनों के शास्त्रीय विचारों में अन्तर है। महर्षि ने गुण कर्म और स्वभाव से वर्ण व्यवस्था मानते हुए जन्म से मानने की परिपाटी को बिल्कुल ही समाप्त करना चाहा और इसी रूप में अछूतोद्धार का प्रश्न हल किया है। परन्तु महात्मा गांधी ने जन्म की परिपाटी का उलंघन न करते हुए केवल व्यवहार में से छुआ–छूत के अन्याय को उठा देने का प्रयत्न किया। लोकमान्य तिलक अछूतोद्धार के प्रबल पक्षपाती न थे फिर भी अछूतों से हार्दिक सहानुभूति अवश्य रखते थे। उन्होंने 1894 में गणपति उत्सव में उस चमार के गणपति को जिसे जलूस में सम्मिलित नहीं किया गया था, अपने गणपति की पालकी में बिठाया। वे कहा करते थे कि किसी मनुष्य को अछूत समझना परमात्मा के प्रति गुनाहगार होना है। किन्तु इस विषय में उन्होंने स्वयं उस समय की किसी सामाजिक मर्यादा का उलंघन नहीं किया और न ही ऐसा करने का कभी स्पष्ट उपदेश ही किया। समुद्र यात्रा का विषय भी उन्नीसवीं सदी की समाज के लिए विशेष महत्व रखता था। दयानन्द इसके सम्पूर्ण पक्ष में थे यद्यपि वह कभी विदेश नहीं गए। महात्मा जी भी विदेश यात्रा को पाप नहीं मानते थे और वह विदेश गए भी। लोकमान्य तिलक भी विदेश गए परन्तु उन्होंने वहां से लौट कर प्रायश्चित अवश्य किया। लोकमान्य ने उस समय के प्रचलित शास्त्रोक्त मत के विरुद्ध कभी आचरण नहीं किया।

महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी में एक और समानता यह है कि उनके कार्य क्षेत्र भारतीय समाज सुधार व स्वराज्य प्राप्ति होते हुए भी उनके दृष्टि कोण संकुचित राष्ट्रवाद से बहुत ऊपर उठे हुए थे। दोनों ही जगत के कल्याण और मनुष्यमात्र की भलाई में रत थे। इसी दृष्टि से दोनों महापुरुष संसार से कुछ ऊपर उठे हुए हैं और राजनीतिज्ञ की अपेक्षा धर्माचार्य अधिक दीख पड़ते हैं। आत्मशुद्धि आत्मसुधार व चरित्र निर्माण आदि की आध्यात्मिक बातों पर महर्षि और महात्मा गांधी दोनों जोर देते हैं।

महर्षि और लोकमान्य तिलक में भी कई समानताएं ऐसी हैं जो महर्षि और महात्मा गांधी में नहीं मिलती। महात्मा गांधी की अहिंसक नीति महर्षि या लोकमान्य की नीति से बिल्कुल नहीं मिलती है। महर्षि के असहयोग में अहिंसा की कोई शर्त नहीं है। पूर्ण सामर्थ्य से जहाँ तक ही सके अन्यायकारी के बल की हानि का उपदेश और राजनीति के प्रकरण में सब प्रकार के शास्त्रास्त्र आदि का है। जैसे को तैसा की नीति में भी महर्षि और लोकमान्य प्रायः एक मत हैं। दोनों का संस्कृत ज्ञान प्राचीनता से प्रेम और वैदिक स्वाध्याय इत्यादि, दृष्टि भेद होते हुए भी प्राय समान ही हैं' यद्यपि लोकमान्य को उतने संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने का अवसर नहीं मिला। तीनों को यदि राजनैतिक मापदण्ड से मापें तो महर्षि और लोकमान्य बहुत कुछ बराबर रहते हैं और सात्विक मापदण्ड से मापने पर महर्षि और महात्मा बराबर दीख पड़ते हैं। तथ्य तो यह है कि तीनों ही अपने अपने समय के अद्वितीय महापुरुष हैं।

युगपुरुषों का यह मिलान तो उतना कठिन नहीं जितना कि इतिहास में उनके वास्तविक स्थान का निर्णय। स्वामी दयानन्द का वास्तविक स्थान संसार के इतिहास में क्या है इस बात का निर्णय इस समय असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवयश है। और इस कठिनाई का मात्र कारण यही है कि हम अभी महर्षि के बहुत निकट हैं। एक पर्वत की महानता, विशालता तथा पर्वत श्रृंखला में उसके स्थान का निर्णय उस पर्वत के एक दम नीचे खड़े होकर नहीं हो सकता। उसकी महानता के दिग्दर्शन के लिए कुछ दूरी पर खड़े होना अत्यन्त आवश्यक है।

ठीक इसी प्रकार महर्षि की वास्तविक महानता का दिग्दर्शन कुछ और शताब्दियां बीत जाने पर ही हो पाएगा। मेरे इस कथन की पुष्टि संसार के इतिहास से होती है। महात्मा बुद्ध के जीवन काल में किसने जाना था कि वे जगद्गुरु के उच्च आसन पर लोगों की स्मृतियों में बिठाए जाएंगे। सम्राट अशोक के बुद्ध धर्म को अपना लेने पर भी उस समय किसी ने न जाना था कि बुद्ध को विश्व इतिहास में वह पद प्राप्त होगा जो कि उन्होंने आज प्राप्त किया हुआ है। बुद्ध द्वारा लगाए हुए पौधों को फलने फूलने और फल लाने में कितनी ही सदियां लग गईं। इसी प्रकार महात्मा ईसा के बलिदान के समय और उनके बलिदान के पचास या सौ साल बाद तक लोग उनको उनका वास्तविक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दे पाए थे। वास्तव में देखा जाए तो महात्मा बुद्ध व ईसा को मृत्यु के सो साल

thearyasamaj.org

पश्चात तक जितना महता मिला था उससे कितनी गुणा अधिक आज दयानन्द को प्राप्त हो चुकी है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि पर्याप्त समय बीत जाने पर स्वामी दयानन्द की गणना बुद्ध और ईसा की श्रेणी में होगी।

दयानन्द का हृदय ईसा की तरह मानवता के दुःख से दुःखी था। परन्तु बौद्धिक तौर पर दयानन्द ईसा से कहीं अधिक ऊंची श्रेणी में थे। ईसा व दयानन्द दोनों ने मानवता की सेवा की और मानवता के कष्टों को दूर करने में जीवन बलि किया।

महात्मा बुद्ध ईसा की अपेक्षा दयानन्द के अधिक निकट हैं। दोनों ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग सत्य की खोज में बिताया और फिर सत्य के वास्तविक रूप को समझ लेने पर उन्होंने अपना शेष जीवन साधारण जनता को सत्य के वास्तविक रूप से परिचित करवाने में लगाया। दोनों के जीवन पवित्र थे। दोनों मानवता से प्यार करते थे। दोनों दया और पवित्रता के अवतार थे। महात्मा बुद्ध का उद्देश्य समाज में ब्राह्मणों द्वारा फैलाए हुए रूढ़ियों रीति रिवाजों, यज्ञों आदि के ढकोसलों को समाप्त कर जातपात के बन्धनों से रहित भ्रातृत्वपूर्ण स्वतन्त्र समाज का निर्माण करना था। दयानन्द का उद्देश्य भी सामाजिक कुरीतियों अवैदिक अन्धविश्वासों तथा निरक्षरता व अज्ञानता को समाज से दूर करना था। परन्तु यहाँ हम एक अन्तर देखते हैं। बुद्ध ने केवल ब्राह्मणों के समाज में एकाधिकार का मुकाबला किया था जहाँ पर दयानन्द ने न केवल ब्राह्मणों, के वरन इस्लाम, ईसाइयत तथा अन्य पन्थों सभी का डट कर विरोध किया।

बुद्ध और दयानन्द दोनों भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। दोनों विदेशी धर्म व संस्कृति के प्रभाव से अछूते बचे रहे थे। बुद्ध के समय तो बाहर की दुनिया से भारत बेखबर ही था परन्तु दयानन्द के समय में नहीं। फिर भी दयानन्द ने योरूप के प्रभाव से अपने को अछूता रखा यह उनकी महानता है। बुद्ध के समय भारतवासी राजनैतिक तौर पर स्वतन्त्र थे यद्यपि सामाजिक कुरीतियों के पंजों में बुरी तरह फंसे थे। ब्राह्मण लोग अधिनायकों की भांति जनता का अज्ञानता तथा यज्ञ सम्बन्धी शास्त्रीय क्रिया-पद्धतियों पर जोर डाल अन्धविश्वासों के गढ़े में धकेले चले जा रहे थे। बुद्ध ने इनसे समाज को बचा एक महान कार्य किया। परन्तु दयानन्द का कार्य इससे भी अधिक महान था। दयानन्द के समय के समाज में न केवल अन्धविश्वास और ब्राह्मणों का धार्मिक क्षेत्र में आतंक ही छायाथा वरन् साथ ही में भारतवर्ष पर विदेशी सत्ता व संस्कृति का राज्य था और भारत वासी इस सत्ता के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी दृष्टियों से दास बन चुके थे। ऐसी भारतदुर्दशा के समय दयानन्द ने भारतीय समाज में नवजीवन संचार का सफल प्रयत्न किया। उनके बोए हुए बीज विश्व भर की मानवता को स्वातन्त्रय की भावना से परिपूर्ण करेंगे और वह समय आएगा जब कि न केवल भारत की जनता वरन् प्राणिमात्र उनके सच्चे रूप को पहचान उन्हें मानवता को महानतम रक्षक पोषक तथा पुनरूद्धारक घोषित करेगा।

धर्मवीर श्री पं. लेखराम

संसार भावमय है। संसार केवल भाव का प्रसार है। भाव ही संसार में शासन करते हैं। मानव-मन में प्रथम भाव का ही अविर्भाव होता है; उसके अनुसार ही वह क्रिया में प्रवृत्त होता है। साधारण मनुष्यों के मानसरोवरों में भावों के आविर्भाव-तिरोभाव की तरंगें सदा उठती रहती हैं। उनके बहुत से भाव दरिद्रों के मनोरथों के समान उत्पन्न होते ही विलीन हो जाते हैं, किन्तु महाशयों के भावकार्य परिणत हुए बिना नहीं रहते। महापुरुषों के भाव तो संसार में हलचल मचा देते हैं, जगत की बड़ी-बड़ी क्रान्तियों के कारण महापुरुषों के भाव ही हुए हैं। संसार के सारे मतमतांतर महापुरुषों के विविध भावों का ही प्रपंच हैं। जब किसी महापुरुष के हृदय पर किसी भाव का बलपूर्वक आघात होता है तभी वह संसार में प्रचार पाता है और किसी विशेष मत का रूप धारण करता है। नाना मतों की संस्थापना यही प्रक्रिया और इतिहास भी यही है किन्तु भावों के आघात प्रतिघात का प्रभाव भावुक हृदयों पर ही चिरस्थायी होता है और इसलिए संसार में जितने परिवर्तन, विप्लव तथा क्रांतियाँ हुई हैं वे सब भावुक महापुरुषों द्वारा ही हुई हैं जनसाधारण ऐसे भावुक महापुरुषों को उन्मक्त व पागल कह कर हंसता है और वे वस्तुतः अपनी धुन में उन्मक्त वा मस्त रहते हैं। संसार के इतिहास को बनाने वाले विविध धर्मों के संस्थापक अपने विचारों के पीछे पागल बने हुए अपनी धुन के पक्के ऐसे ही उन्मक्त महानुभाव थे। यदि धर्म संस्थापकों की जीवनियों

thearyasamaj.org

का मनन किया जाए तो यह विशेषता उन सब में सामान्य रूप से उपलब्ध होगी। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, कबीर, दयानन्द, गान्धी सभी अपने विचारों के प्रचार में उन्मक्त प्रतीत होंगे। उनके सिद्धान्तों का प्रसार भी संसार में उनके भावुक अनुयायियों के द्वारा हुआ है। बुद्ध के आनन्द आदि प्रमुख भिक्षु, ईसा के पितरस आदि हौवारी, मुहम्मद के अत्युत्साही (जोशीले) अली और उमर आदि खलीफे इसके उत्तम उदाहरण हैं। इसी भांति श्री पं. लेखराम भी महर्षि दयानन्द के अत्यन्त भावुक अनुयायी थे।

आर्य समाज में तो कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो धर्मवीर पं. लेखराम आर्यपथिक के नाम और काम को न जानता हो किन्तु आर्यसमाज से बाहर भी करोड़ों मनुष्य पं. लेख राम के नाम से परिचित हैं। पं. लेखराम की भावुकता ही सर्वसाधारण में उनके इस परिचय की मूलकारण बनी थी।

वे पंजाब के झेलम जिले के एक अप्रसिद्ध ग्राम सैदपुर में एक अप्रसिद्ध सारस्वत ब्राह्मण कुल में जन्मे थे परन्तु उनमें अपने पितृकुल की सैनिकवृत्ति से आया हुआ। शरीर का गठन तथा क्षात्र तेज का कुछ अंश भी अवश्य विद्यमान था। उनके पितामह महता नारायणसिंह पंजाब के सिक्खकालीन विप्लव के वीर योद्धा थे और कई संग्रामों में अपना हाथ दिखा चुके थे। उन्हीं महता नारायण सिंह के पुत्र महता तारासिंह हुए जिन के पुत्र पं. लेखराम का जन्म 8 सौर चैत्र संवत् 1915 विक्रमी को शुक्र के दिन उक्त ...पुर ग्राम में हुआ था।

वे बाल्यकाल से ही भावुक तथा धार्मिक थे। अपने चचा पं. गंडाराम जी को एकादशी का व्रत करते हुए देख कर बालक लेख राम ने 11 वर्ष की अवस्था में बड़ी श्रद्धा से एकादशी का व्रत विधिपूर्वक रखना आरम्भ कर दिया था। उनको बाल्यकाल में केवल उरदू फारसी की शिक्षा मिली थी क्योंकि उस समय पंजाब औरसंयुक्त प्रान्त में उसी के पढ़ाने की परिपाटी प्रचलित थी। यह शिक्षा आगे चल कर उनके मोहम्मदीमत की आलोचना करने में बहुत सहायक हुई। उनके विद्यार्थी जीवन में केवल यही बात उल्लेख योग्य है कि वे तब भी स्वतंत्रताप्रिय, प्रत्युत्पन्नमति तथा तात्कालिक उत्तर प्रत्युत्तरप्रवीण थे और कविता की ओर भी उनका कुछ झुकाव था।

संवत् 1962 के पौष मास में वे अपने चचा पं. गंगा राम इन्सपेक्टर पुलिस की सहायता से पेशावर पुलिस में सारजेंट के पद पर नियुक्त हो गये। ऊपर बतलाया जा चुका है कि पं. लेखराम के बालहृदय में ही भावुकता तथा धार्मिकता का अंकुर विद्यमान था। एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उनकी प्रवृत्ति पूजा पाठ में प्रारंभावस्थ्ज्ञा से ही हो चुकी थी। प्रातःकाल स्नान ध्यान में निमग्न रहते और गुरु मुखी में लिपिबद्ध भगवद्गीता का पाठ किया करते थे। श्री कृष्ण की भक्ति में तन्मय रहते थे। जीव ब्रह्म की एकता के विश्वासी और वैराग्यप्रवण थे। 21 वर्ष की अवस्थ्ज्ञा में उनके माता पिता ने उनको विवाह बन्धन में आबद्ध करना चाहा पर उन्होंने अपने वैराग्यवश उसको स्वीकार न किया। उन की धर्म जिज्ञासा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। उन्हीं दिनों उनको लुधियाने के प्रसिद्ध स्वतंत्र विचारक मुंशी कन्हैया लाल अलखधारी के ग्रन्थ पढ़ने का अवसर मिला। अलखधारी जी के ग्रन्थों से उनको ऋषि दयानन्द के आर्य धर्म प्रचार और आर्य समाज की स्थापना का वृतान्त ज्ञात हुआ। उन्होंने डाक द्वारा ऋषि दयानन्द प्रणीत ग्रन्थों को मंगा कर पढ़ना प्रारम्भ किया। उससे उनके विचार सर्वथा बदल गए और वे आर्यसमाजी बन गए।

वैदिक धर्मावलम्बी बन कर पं. लेख राम ने संवत् 1937 के अन्तिम भाग में (सं. 1936 होना चाहिये) सीमाप्रान्त के यवनप्रायः पेशावर नगर में आर्य समाज की स्थापना की। उस समय पेशावर आर्यसमाज के सर्व सर्वा वे ही थे। वे और उनके चार पांच साथियों से ही आर्यसमाज संगठित था। पं. लेखराम के मन में जीव ब्रह्म की एकता आदि के विषय में शंकायें उस समय तक बनी हुई थीं उनकी निवृत्ति के लिए उन्होंने स्वयं आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द के दर्शन करने का निश्चय किया और साढ़े चार वर्ष की नौकरी के पश्चात एक मास की छुट्टी लेकर 17 मई सन् 1880 ई. (सं. 1936 वे.) को अजमेर पहुँच कर सेठ फतहमल जी की वाटिका में ठहरे हुए ऋषि दयानन्द के प्रथम और अन्तिम बार दर्शन किए। इस समागम का वृतान्त उन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है-

स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्योपदेश से सब संशय निवृत हो गए। उन्होंने महर्षि से उन से जयपुर में एक बंगाली की

thearyasamaj.org

उपस्थित की हुई यह शंका पूछी कि जब आकाश और ब्रह्म दोनों सर्वव्यापक हैं तो दो व्यापक एक स्थान पर कैसे रह सकते हैं। महर्षि दयानन्द ने एक पत्थर उठा कर कहा कि जिस प्रकार इसमें अग्नि मिट्टी और परमात्मा तीनों व्यापक हैं, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में आकाश और ब्रह्म दोनों व्यापक हैं। सूक्ष्म वस्तु में भी उससे भी सूक्ष्मतर वस्तु व्यापक रहती है। ब्रह्म सूक्ष्मतम होने के कारण सर्वव्यापक है। पं. लेखराम जी लिखते हैं कि "इससे मेरी शान्ति हो गई।" उन्होंने महर्षि के अन्य संशय उपस्थित करने की आज्ञा देने पर उनसे दस प्रश्न पूछे थे। उनमें से तीन उन्होंने उत्तर सहित स्वयं लिखे हैं। शेष उनको विस्मृत हो गए थे।

प्रथम प्रश्न- जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये।

उत्तर- यजुर्वेद का सारा चालीसवां अध्याय जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है।

द्वितीय प्रश्न- अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं?

उत्तर- अवश्य करना चाहिये।

तृतीय प्रश्न- विद्युत क्या वस्तु ह और कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- विद्युत सब स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होता है। बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

"अन्त में मुझे आदेश दिया कि 25 वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करना।" ऋषि दयानन्द के स्वल्प सत्संग से पं. लेखराम के धार्मिक विचार दृढ़ हो गए और वैदिक धर्म पर उनका विश्वास चट्टान के समान अटल हो गया।

अजमेर से लौट कर उन को दिन रात धर्म प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। उन्होंने पेशावर आर्यसमाज की ओर से अपने सम्पादन में "धर्मोंपदेश" नामक उर्दू का मासिक पत्र जारी कराया। उस के साथ ही मौखिक व्याख्यान भी प्रायः देते रहते थे। कुछ दिनों पश्चात उनकी बदली पेशावर से अन्य पुलिस स्टेशनों को हो गई। उनकी धार्मिक लगन के कारण उनके विधर्मी अफसर उनसे मनोमालिन्य रखने लगे थे। उधर पं. लेखराम की स्वतंत्र आत्मा विगर्हित श्ववृत्ति (सेवावृत्ति) से दिनोंदिन खिन्न होती जाती थी। अन्त में उन्होंने 24 जुलाई सन् 1884 (स. 1941 वे.) की सदा स्मरणीय तिथि को पोलिस की सेवा से त्यागपत्र दे दिया और उसमें यह भ लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पश्चात मुझको रोकने का अधिकार किसी को भी न होगा। दो महीने पश्चात 30 सितम्बर सन् 1884 (सं. 1941 वें) को उन्होंने मनुष्यों के दासत्व से सदा के लिए मोक्ष लाभ किया। इस दासत्व श्रृंखला के कटते ही सारजेंट लेखराम, पं. लेखराम बन गए। ■

आर्य समाज अर्जुन नगर, गुड़गांव का चुनाव

श्री मा. सोमनाथ आर्य को सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित किया गया। अन्य अधिकारी एवं कार्यकारिणी के सभासदों के मनोनयन का अधिकार सभा के प्रधान जी को दिया गया। श्री प्रधान जी ने निम्नलिखित अधिकारी एवं कार्यकारिणी के सभासद 2014-15 हेतु मनोनीत किये-
1. प्रधान- मा. सोमनाथ आर्य, 2. वरि. उप-प्रधान - श्री सोमनाथ मल्होत्रा, 3. उप-प्रधान- श्री श्याम सुन्दर आर्य, 4. मन्त्री-श्री लक्ष्मण पाहूजा, 5. उप-मन्त्री-श्री प्रवीन मदान, 6. कोषाध्यक्ष - श्री अर्जुन देव मनचन्दा, 7. पुस्तकालय अध्यक्ष - सुनील मल्होत्रा, 8. लेखा निरीक्षक : बलदेव राज मेहता।

प्रधान जी ने सभी से मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग की प्रार्थना करते हुए घरों में पारिवारिक सत्संगों को आयोजित करवाने का विशेष आग्रह किया।

- सोमनाथ आर्य, प्रधान

thearyasamaj.org

मुमबई में आदर्श जीवन निर्माण शिविर सम्पन्न

आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के तत्वावधान में आर्य वीर दल मुम्बई ने "आदर्श जीवन निर्माण शिविर" का आय्रोजन रविवार दि. 11 से रविवार दि. 18 मई 2014 तक आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में किया। यज्ञ के उपरान्त शिविर का उद्घाटन एवं ध्वजारोहण प्रसिद्ध उद्योगपति एवं आर्यश्रेष्ठी श्री लद्धाभाई विश्राम पटेल, घाटकोपर के करकमलों से हुआ। इस शिविर के मुख्य शिक्षक श्री धर्मेन्द्र आर्य मुम्बई, श्री प्रशान्त आर्य अलीगढ़ एवं श्री हरेन्द्र आर्य मुजफरनगर थे। मुम्बई के सभी आर्य समाजों के कर्मठ कार्यकर्ताओं ने सक्रिय रूप से भाग लेते हुए बच्चों का उत्साहवर्धन किया। आदर्श जीवन निर्माण शिविर के अन्तर्गत शारीरिक, आत्मिक व बौद्धिक उन्नति के लिए अनेक विद्वानों को आमन्त्रित करके विभिन्न विषयों पर मार्ग दर्शन दिया गया यथा-उत्तम विद्यार्थी बनाना, स्मरणशक्ति बढ़ाना, व्यक्तित्व विकास, आत्मविश्वास पैदा करना, तनाव से मुक्ति, योग प्राणायाम, ध्यान, आसन, स्वस्थ निरोग रहने के प्रभावी सूत्रों पर तथा सैद्धान्तिक, सारगर्भित एवं प्रभोवोत्पादक प्रवचनों से शिविरार्थियों को लाभान्वित किया गया।

सार्वदेशिक आर्य वीर दल दिल्ली के प्रधान संचालक स्वामी देवव्रत आचार्य ने समूचे कार्यक्रम की प्रशंसा की तथा भविष्य में इसी प्रकार के आवासीय शिविरों का आयोजन और आर्य समाजों में नियमित शाखाएँ लगाने की प्रेरणा दी। जिससे मुम्बई के आर्य परिवार के बच्चे वैदिक धर्म, सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों से अवगत हो सकें, आदर्श जीवन निर्माण की दिशा में अग्रसर हो सकें।

शिविराध्यक्ष श्री दिनेश आर्य ने शिविरार्थियों को अपनी शुभकामनाएँ प्रदान की। धर्मधर आर्य महामन्त्री, आर्य वीर दल मुम्बई ने सभी के सहयोग को सराहा तथा सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

अंत में शान्तिपाठ एवं जयघेष हुआ, प्रीतिभोज के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

- पं. धर्मधर आर्य सिद्धानताचार्य

महामन्त्री

thearyasamaj.org

भारत के जगद्गुरु होने का अर्थ व उपाय क्या है?

– आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

सोलहवीं लोकसभा के चुनाव ने भारत को एक महान् देशभक्त नेतृत्व श्री नरेन्द्र मोदी के रूप में प्रदान किया है, जिन्होंने काशी में भारत को जगद्गुरु बनाने की इच्छा का संकेत करते हुए कहा था, "जब भारत जगद्गुरु था तब काशी नगर राष्ट्रगुरु था और यदि भारत को पुनः जगद्गुरु बनाना है तो काशी को राष्ट्रगुरु बनाना होगा।" काशी को राष्ट्रगुरु बनने का संकेत स्पष्ट है कि भारत की प्राचीन वैदिक विरासत व देववाणी संस्कृत भाषा का पुनरोदय होने से ही यह राष्ट्र पुनः जगद्गुरु बन सकता है। इधर श्री मोदी के मन्त्रिमण्डल की एक सदस्या श्रीमती स्मृति ईरानी जिन पर भारत के मानव संसाधन विकास मंत्रालय का बहुत महत्वपूर्ण दायित्व है, ने वैदिक साहित्य पढ़ाने की वकालत की है। यह देश के लिए बहुत ही शुभ संकेत है। यहाँ कुछ कथित प्रबुद्ध जनों को श्री मोदी के कथनों में परस्पर विरोध प्रतीत हो सकता है। उनकी दृष्टि में मोदी जी एक ओर अत्याधुनिक विज्ञान, तकनीक के द्वारा राष्ट्र को अमेरिका, चीन व यूरोपीय देशों की बराबरी पर लाने की बात करते हैं तो दूसरी ओर वे भारत की प्राचीन परम्परा के पुनरोदय की बात करते हैं। क्या यह परस्पर विरोध नहीं है?

अंग्रेजी भाषा के एकछत्र विश्वव्यापी शासन तथा वर्तमान विज्ञान व टैक्नोलोजी के इस युग में वेदादि की बात करना कहाँ तक युक्ति संगत है, वह भी वेदादि शास्त्र व संस्कृत भाषा के बल पर भारत को विश्व का गुरु बनाने का स्वप्न देखना व दिखाना कहाँ तक उचित है, यह अवश्यमेव विचारणीय हैं वर्तमान विश्व में तो दूर की बात है, अपने देश में भी इस प्रकार की बातों पर प्रबुद्ध वर्ग विश्वास नहीं करता। मेरी दृष्टि में इसके दो कारण हैं। प्रथम यह कि भारत का नागरिक विशेषकर प्रबुद्ध युवा तन से भारतीय तथा मन व आत्मा से पूर्णतः मैकाले का भक्त हो चुका है। उसे भारतीयता की वह कोई बात अच्छी नहीं लगती जो पूर्व काल की संस्कृति, सभ्यता व शिक्षा की समर्थक हो। दूसरा कारण यह भी है कि भारतीय वैदिक विद्या वा संस्कृत भाषा की वकालत करने वालों ने कोई ऐसा महत्वपूर्ण चमत्कार वर्तमान समय में नहीं किया, जिसे पाश्चात्य विद्या विज्ञान के सम्मुख कुछ भी महत्व मिल सके। बड़े-बड़े कथित वैदिक विद्वान्, संस्कृत भाषा के पण्डित, दर्शनाचार्य सभी पाश्चात्य विज्ञान व टैक्नोलोजी के सम्मुख नतशिर होकर उनका सगर्व प्रयोग कर रहे हैं। वेद, दर्शन आदि का नाम लेकर जो संस्थाएं चल रही हैं, जिन विद्वानों की आजीविका चल रही है, उनके बच्चे भी संस्कृत वा वैदिक विद्या को नहीं पढ़ते। पिता वा गुरु व नेता संस्कृत भाषा व आर्ष विद्या की बात तो करते हैं परन्तु पुत्र, शिष्य व अनुयायी अंग्रेजी भाषा व पाश्चात्य मैकाले की शैली की शिक्षा न केवल देश अपितु विदेश में जा-जाकर ग्रहण करते हैं, तब वेदादि शास्त्रों व संस्कृत भाषा को कौन पढ़ेगा और कैसे इससे भारत को विश्व के उच्च विकसित विज्ञान का गुरु बनाया जा सकेगा? यह बात गम्भीरता से सोचने का अवसर किसी के पास नहीं है। यदि श्री मोदी आधुनिक विज्ञान व टैक्नोलोजी का बहु आयामी विकास करके स्पर्धा में चीन, अमेरिका, फ्रांस, जापान व जर्मनी जैसे विकसित देशों से आगे जाकर भारत को जगद्गुरु बनाने की बात करते हैं, तब भी जगद्गुरु का स्वप्न पूर्ण नहीं होगा। भले ही हम स्वच्छ प्रशासन, प्रबल पुरुषार्थ व भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाकर विश्व में सर्वोत्कृष्ट कम्प्यूटर, अन्तरमहाद्वीपीय मिसाइलें, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रॉन बम जैसे घातक अस्त्र बना लें। ऐलोपैथी चिकित्सा, अन्तरिक्ष विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि में हम क्रान्तिकारी विकास करके भारत की शिक्षा पद्धति को उच्चतम शिखर पर पहुँचा कर ऐसे विश्वविद्यालयों, आई.आई.टी., आई.आई.एम. व ऐम्स जैसे शिक्षण संस्थानों को विश्व के सर्वोत्कृष्ट स्थान दिलाने में कभी सफल हो जायें। हमारा 'इसरो' अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' को पीछे छोड़ दे और भले ही हम विश्व की सबसे बड़ी प्रयोगशाला 'सर्न' से बड़ी प्रयोगशाला बना कर संसार के सभी देशों के मार्ग दर्शक व नेता बन जायें परन्तु नैतिकता की दृष्टि से भारत को जगद्गुरु बनने हेतु यह पर्याप्त योग्यता व सामर्थ्य नहीं होगी।

(समापन अगले अंक में)

thearyasamaj.org

आर्य वीर विजय (मासिक) 25 सितम्बर, 2014

HR/FBD/67/2013-2015 dt. 1.1.13
Reg. No. : 42323/84

सेवायाम्
श्रीमान्/श्रीमती

आर्य समाज, सैक्टर 7,
फरीदाबाद-121 006

उजली व चमकदार धुलाई

हाथ सुरक्षित

वनस्पति अखाद्य तेलों से निर्मित

निर्माता : **पुनीत उद्योग**

37- E, सैक्टर 6, फरीदाबाद-121006

दूरभाष : 0129-2241467, 4061389

ट्रेड मार्क मालिक :-

उत्तम कैमीकल उद्योग

प्लाट नं. 309, सैक्टर-24, फरीदाबाद पिन - 121006

आर्य वीर विजय, मनोहर लाल द्वारा आर्य वीर दल हरियाणा के लिए 'तप मिनी ऑफसैट प्रिंटर्स', 279 सैक्टर 7 मार्किट, फरीदाबाद से छपवाकर, आर्यसमाज मन्दिर, सैक्टर 7, फरीदाबाद-121006 से प्रेषित।